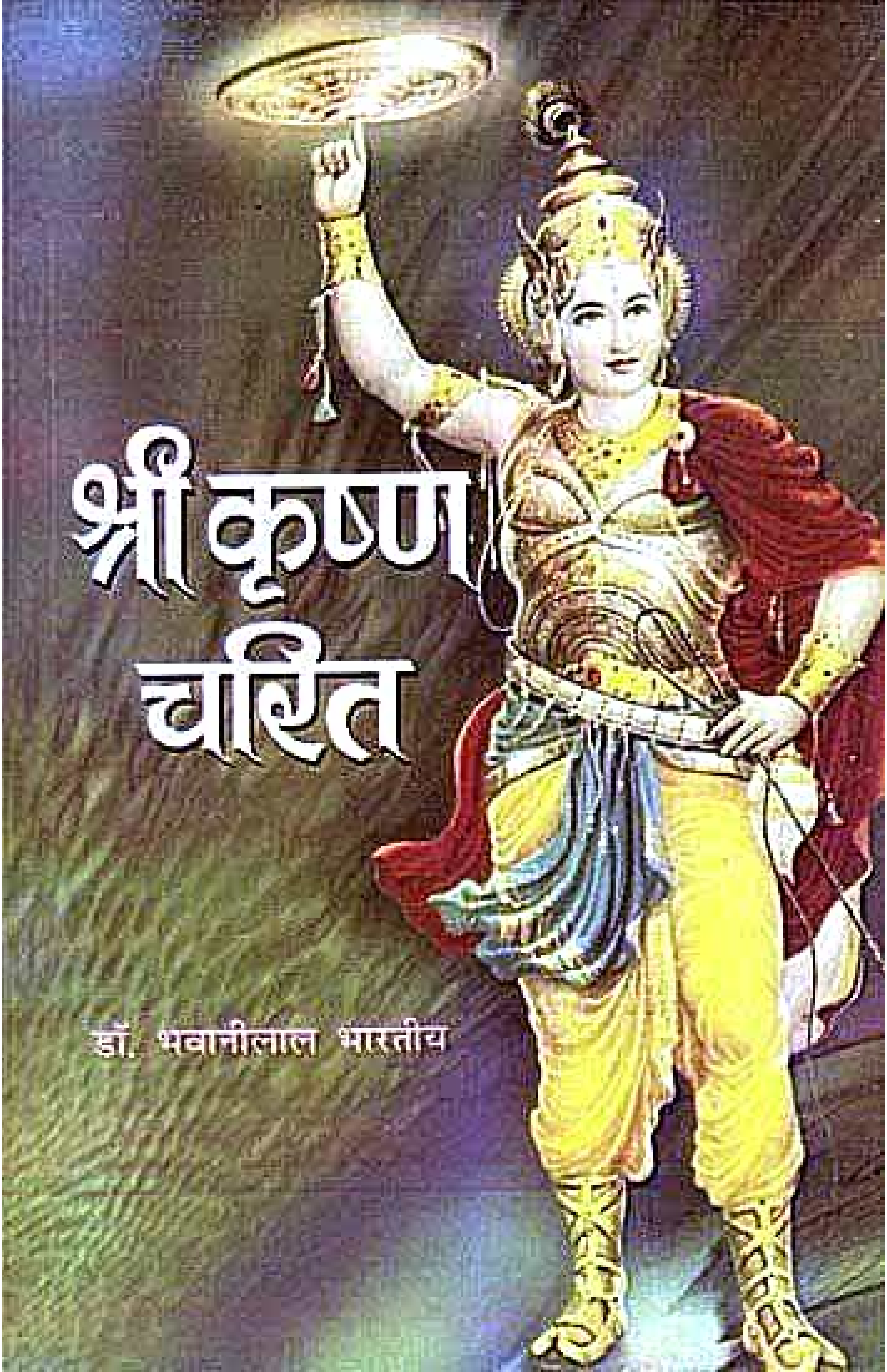


श्री कृष्ण चरित

डॉ. भवानीलाल भारतीय

ओ३म्

श्रीकृष्ण-चरित

[महाभारत पर आधारित आलोचनात्मक विश्लेषण]

लेखक

डॉ० भवानीलाल भारतीय

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रोफ़ैसर एवं अध्यक्ष, दयानन्द चेयर फ़ॉर वैदिक स्टडीज़

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

गोविन्दराम हासानन्द

अध्याय २

कृष्ण-चरित्र की विकृति तथा उसके कारण

कृष्ण एक आदर्श पुरुष थे। उन्होंने अपने कार्यों तथा विचारों के द्वारा महान् आदर्शों की स्थापना की। बंकिमचन्द्र के शब्दों में तो "ऐसा सर्वगुणान्वित और सर्वपापरहित चरित्र और कहीं नहीं है, न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में।"[1] युग-द्रष्टा दयानन्द ने उन्हें आप्तपुरुष और महात्मा कहा। खेद है कि ऐसे महनीय और गौरवान्वित चरित्र को कालान्तर में उसी महापुरुष के देशवासियों ने अत्यन्त विकृत और कलंकित बना दिया। संस्कृत और हिन्दी के कवियों, पुराण-लेखकों तथा सामान्य ग्रन्थकारों ने उनके चरित्र पर मनमाने आक्षेप और आरोप लगाये। फलतः उनके अमल-धवल चरित्र की पावन मन्दाकिनी में अनेक अपावन एवं कलुषित धारायें ऐसी भी आ मिलीं जिनसे सम्पूर्ण कृष्ण-चरित्र छल-छिद्रपूर्ण, मर्यादाहीन तथा गर्हित बन गया। यहाँ यह बात विचारणीय है कि वे कौन-कौन-सी विकृतियाँ हैं जो पुराण-लेखकों, साम्प्रदायिक दुराग्रही जनों तथा निरंकुश कवियों के द्वारा कृष्ण-चरित में समाविष्ट की गईं जिनके कारण कृष्ण का उदात्त, दिव्य, लोकमंगल-विधायक, एवं भास्वर-चरित्र पतन के गहन गह्वर में विश्राम करने लगा? यहाँ कृष्ण-चरित्र पर लगाये जानेवाले इन्हीं दोषों और लांछनों पर विचार किया जायगा।

इतिहासकारों की यह सुनिश्चित धारणा है कि 'महाभारत' में कृष्ण के जीवन-वृत्त का जिस प्रकार उल्लेख मिलता है, उसमें उन्हें सर्वथा मनुष्य के रूप में ही चित्रित किया गया है। उनके सभी क्रिया-कलाप आदर्श मानवों के तुल्य हैं जिनमें किसी प्रकार की अलौकिकता का लेशमात्र भी नहीं है। परन्तु कालान्तर में जब भारतीय धर्म में

---

१. कृष्ण चरित्र, पृ० ३

ईश्वर के अवतार लेने की कल्पना ने प्रश्रय प्राप्त किया तो वासुदेव कृष्ण को भी विष्णु का प्रधान अवतार मान लिया गया। अन्य अवतार तो उस परम तत्त्व के अंश-कला मात्र हैं परन्तु कृष्ण को तो पूर्णावतार अथवा षोडश कला-सम्पन्न अवतार कहा गया—

'एतेचांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।'

यह और भी आश्चर्य की बात है कि जिसे परात्पर विष्णु का अवतार कहा गया उसे ही चोरी, व्यभिचार, धोखाधड़ी, क्रूरता आदि दुर्गुणों का भण्डार कहने में भी पुराणकारों और कवियों को संकोच नहीं हुआ। कृष्ण के निर्मल, स्वाभाविक एवं मानवोचित चरित्र को विस्मृत कर उनके नाम पर जो पाप एवं दुराचार की कहानियाँ गढ़ी गईं उन्हें विभिन्न रूपकों और मिथ्या आध्यात्मिक अलंकारों से आच्छन्न कर सामान्य भक्तजनों को पथभ्रष्ट एवं दिङ्मूढ़ बनाया गया। अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कृष्ण जैसे आदर्श पुरुष के चरित्र पर ईश्वरत्व का आरोप करना, उसे परमात्मा का अवतार बताना और मानना एक ऐसी ही विकृति है जिसने कृष्ण के वास्तविक गौरव और माहात्म्य को तो कम किया ही है, उन्हें सामान्य भावभूमि से हटाकर अलौकिक देव-समाज में प्रतिष्ठित कर दिया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि कृष्ण-चरित्र से मानव-समाज को जो शिक्षा, प्रेरणा अथवा स्फूर्ति मिलती है, उसे सर्वथा भुला दिया गया और केवल उनके मूर्तिमय विग्रह की पूजा-अर्चा करना अथवा उनकी कवि तथा पुराण-वर्णित लीलाओं का गायन करना ही लोगों का एकमात्र कर्त्तव्य बन गया। इससे एतद्देशीय जन-समाज की जो महती हानि हुई है, वह स्पष्ट है।

यहाँ अवतारवाद के सिद्धान्त पर विस्तार से विचार करना तो अप्रासंगिक ही होगा किन्तु इतना कह देना ही पर्याप्त है कि भारतीय आर्यसमाज की पुरातन दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तनधारा में ईश्वर के अवतरित होने अथवा परम सत्ता के मनुष्य-रूप में धरा-धाम पर आकर अस्मदादि मानवों के सदृश जीवन यापन करने का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। विश्व-वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में भी ईश्वरीय सत्ता को अशरीरी, निराकार, निर्विकार तथा सर्वव्यापक

ही बताया गया है। ऋग्वेद में जहाँ उसे अज[1] कहा है वहाँ यजुर्वेद के प्रसिद्ध ज्ञानकाण्ड-प्रधान चालीसवें अध्याय में उसे अकाय, अव्रण, अस्नाविर, शुद्ध, अपापविद्ध आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है।[2] अद्वैत सिद्धान्त के रूप में ईश्वर के निराकारत्व का पदे-पदे प्रतिपादन करते हुए भी पुराण-गाथाओं की स्थूलता को यथावत् स्वीकार करनेवाले शंकराचार्य जैसे भाष्यकार ने भी उपर्युक्त मंत्र का अर्थ लिखते हुए उपनिषद्-वर्णित आत्मा को अशरीरी, अर्थात् लिंग-शरीर-रहित, अव्रण अर्थात् अक्षत, और अस्नाविर—स्नायु अर्थात् जिसमें शिरायें न हों, कहकर उसके स्थूल शरीर का प्रतिषेध किया है।[3]

वेदों के परवर्ती ब्राह्मण, उपनिषद्, कल्प-सूत्र-साहित्य तथा षड्-दर्शनों के मूल सूत्रात्मक ग्रन्थों में भी अवतारवाद का किञ्चित्मात्र भी उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत शतशः औपनिषदी श्रुतियों में ब्रह्म के दिव्य, अमूर्त, अज तथा इन्द्रियों से रहित होते हुए भी सर्व-द्रष्टा, सर्वग्रहीता, सर्वज्ञाता तथा सर्वाधिष्ठाता होने का उल्लेख मिलता है। अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ईश्वरावतार की कल्पना से वैदिक चिन्तक सर्वथा अपरिचित थे। राम-कृष्णादि महापुरुषों को ईश्वर के अवतार के रूप में तभी कल्पित किया जाने लगा जब बौद्ध-जैन संस्कारों से प्रभावित होकर वैदिक धर्म पौराणिक ब्राह्मण-धर्म के रूप में परिणत हो गया। राम और कृष्ण के मानवोचित

१. मण्डल ७, सूक्त ३५, मन्त्र १३

२. मंत्र ८—"सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नावरं शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर के स्वरूप का वर्णन करनेवाले इस मंत्र का निम्न प्रकार से अर्थ किया है—"ब्रह्म शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान्, स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर से रहित, छिद्ररहित और नहीं छेदन करने योग्य, नाड़ी आदि के साथ सम्बन्ध-रूप बंधन से रहित, अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र है।"—यजुर्वेद-भाष्य, ४०।८

स यथोक्त आत्मा पर्यगात्परिसमन्तादगाद्गत वानाकाशवद् व्यापी इत्यर्थः। शुक्रं शुद्धं ज्योतिष्मद्दीप्तिमानित्यर्थः। अस्नाविरं स्नावाः शिरा यस्मिन्न विद्यन्त इत्यस्नाविरम्। अव्रणमस्नाविरमित्याभ्यां स्थूलशरीर प्रतिषेधः। शुद्धं निर्मलमविद्यामलरहितमिति कारणशरीर प्रतिषेधः। अपापविद्धं-धर्माधर्मादि पापवर्जितम्॥

३. ईशावास्योपनिषद्, शाङ्कर भाष्य, पृ० २६, गीता प्रेस, गोरखपुर।

चरित्रों का विशद उल्लेख करनेवाले वाल्मीकीय रामायण तथा वैयासिक महाभारत में भी इन्हें साधारण हाड़-मांस के पुतलों, मनुष्यों के रूप में ही चित्रित किया गया है। यह दूसरी बात है कि कालान्तर में जब अवतारवाद का सिद्धान्त भारतीय धर्म-परम्परा में निर्विवाद रूप से स्वीकार हुआ तो इन्हीं राम और कृष्ण के चरित्रों में असाधारण अलौकिकता तथा अमानवोचित क्रियाकलापों का समावेश कर दिया गया। वे अपूर्व शक्तिशाली, मेधावी एवं मनस्वी पुरुष ही समयान्तर में ईश्वरावतार घोषित कर दिये गये। अपने कथन की पुष्टि में निम्न प्रमाण दिये जा सकते हैं।

रामायण का तो आरम्भ ही एक ऐसे पुरुष की जिज्ञासा से होता है जो महर्षि वाल्मीकि की दृष्टि में गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवाक्, दृढ़व्रत, चारित्र्य-युक्त, सर्वभूत-हितरत, विद्वान्, समर्थ, प्रियदर्शन, आत्मवान्, जित-क्रोध, द्युतिमान्, अनसूय आदि विशेषणों से युक्त हो।[1] महर्षि वाल्मीकि की जिज्ञासा को शान्त करते हुए मुनि-पुङ्गव नारद ने जो कुछ उत्तर दिया उसमें इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न राम के ही नाना गुणों का कीर्तन था। ये सभी गुण जिस एक मनुष्य में विद्यमान हैं वह गाम्भीर्य में समुद्र-तुल्य, धैर्य में हिमाचल के समान, पराक्रम में विष्णु के सदृश,[2] सच्चे अर्थों में आर्य कहलाने योग्य है।[3] यही राम प्रश्नकर्ता तथा उत्तरदाता दोनों ऋषियों द्वारा 'नर'[4] अर्थात् मनुष्य ही कहा गया है। रामायण के इस प्रास्ताविक सर्ग से ही यह

---

१. कोन्वऽस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः॥
—बालकाण्ड, सर्ग १, श्लोक १३

२. समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत्प्रियदर्शनः॥—१।१७

३. आर्यः सर्वसमश्चैव सदैकप्रियदर्शनः॥—१।१६

४. एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं परं कौतूहलं हि मे।
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवं विधं नरम्॥—१।५
बहवो दुर्लभाश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः॥—१।७

स्पष्ट हो जाता है कि इस महाकाव्य में जिस व्यक्ति का चरित्र-कीर्तन किया गया है वह मनुष्य ही है, कोई अलौकिक शक्ति-सम्पन्न देवता या ईश्वर नहीं है। इसी प्रकार 'महाभारत' में कृष्ण के जिस स्वरूप का चित्रण हुआ है वह भी सर्वथा स्वाभाविक तथा उनकी मानवोचित प्रवृत्तियों का उल्लेख करता है। स्वयं कृष्ण ही कहते हैं—

अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः।
दैवं तु न मया शक्यं कर्मकर्तुं कथञ्चन॥[1]

मैं यथासाध्य मनुष्योचित प्रयत्न कर सकता हूँ परन्तु दैव के कार्यों में मेरा कुछ भी वश नहीं है। ऐसे शताधिक उदाहरण 'महाभारत' से दिये जा सकते हैं, जिनसे कृष्ण की मानवीयता सिद्ध की जा सके। जहाँ रामायण और महाभारत जैसे आर्ष महाकाव्यों के प्रणेता अपने चरित-नायकों को 'नर' संज्ञा से अभिहित करते हैं, वहाँ परवर्ती पुराण-लेखकों, वैष्णव-सम्प्रदायाचार्यों तथा भक्ति-आन्दोलन के पुरस्कर्ता भाषा-कवियों ने इन नरों को 'नारायण' बनाकर उन्हें वायवीय एवं अपार्थिव धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया। इसका एक सुनिश्चित परिणाम यह हुआ कि राम और कृष्ण जैसे लोकादर्श की स्थापना करनेवाले महापुरुषों की मूर्तियों की स्थापना, उनकी षोडशोपचार पूजा-अर्चा तथा उनके विभिन्न लीला-चरितों का गान तो होने लगा, परन्तु उनके मानव-सुलभ गुणों को ग्रहण कर अपने जीवन को उन्नत बनाने की बात किसी ने नहीं सोची।

कृष्ण-चरित्र की प्रथम विकृति हमने उनके अवतारी पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित किये जाने को कहा है। पुराण-प्रतिपादित ब्राह्मण-धर्म के प्रचार पा जाने पर 'रामायण' और 'महाभारत' के मौलिक कलेवरों में भी यथेच्छ परिवर्तन किये गये तथा वैष्णव साम्प्रदायिकता ने उनके पुरातन आर्ष-रूप को विकृत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अब वाल्मीकि के राम और व्यास के कृष्ण 'विष्णु' के अवतार घोषित किये गये तथा इन दोनों ऐतिहासिक ग्रन्थों में भी इस प्रकार के अंश और प्रकरण प्रक्षिप्त किये गये जिनसे राम और कृष्ण 'विष्णु' के अवतार होना सिद्ध होते हैं।

यह हम पूर्व ही लिख चुके हैं कि अवतारवाद की विचारधारा सर्वथा अवैदिक है। वस्तुतः भारत के धर्म-चिन्तन में अवतारवाद की

१. महाभारत, उद्योगपर्व, ७९।५

विचारधारा का विकास जैन तीर्थङ्करों तथा बौद्ध धर्म में महात्मा बुद्ध के पूर्वजन्मों की कल्पना के आधार–बोधिसत्वों से हुआ है। जैन धर्म के तीर्थङ्कर वीतराग, उदासीन सिद्ध पुरुष हैं जिन्हें उस मत में ईश्वर का स्थान प्राप्त है। इनकी संख्या २४ है। विष्णु के अवतार भी २४ ही माने जाते हैं। बौद्धों की बोधिसत्व-कल्पना बहुत-कुछ वैष्णव अवतारों की कल्पना से मिलती-जुलती है। बौद्धों का यह विश्वास है कि भगवान् बुद्ध को सिद्धि प्राप्त करने में अनेक जन्म धारण करने पड़े थे और राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में जन्म लेने से पूर्व तथागत विभिन्न योनियों में जन्म ले चुके थे। बोधिसत्वों की कथाएँ 'जातक' ग्रन्थों में संगृहीत हैं। बुद्ध के ये विगत जन्म मनुष्य के अतिरिक्त पशु-पक्षी आदि योनियों में भी हुए थे परन्तु उन्होंने निर्वाण-प्राप्ति के लक्ष्य पर सदा ध्यान रक्खा। पौराणिक ब्राह्मण-धर्म ने जैन-बौद्ध-परम्परा के अनुकरण पर ही अवतारों की कल्पना की और उनके विभिन्न चरितों को पुराण-संज्ञक ग्रन्थों में निबद्ध किया बौद्ध जातक, जैन पुराण तथा ब्राह्मण पुराण एक ही कोटि की रचनाएँ हैं, परन्तु इनका रचनाकाल पर्याप्त अर्वाचीन है।

इस प्रकार कृष्ण-चरित्र को उसके सहज मानवीय रूप में न लेकर उसे पारलौकिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना ही ऐसी प्रवञ्चना है जिसने कृष्ण के लोकनायकत्व को समाप्त कर उसके लोकमंगल-विधायक स्वरूप के प्रति देशवासियों की दृष्टि को ओझल कर दिया। जब कृष्ण को ईश्वर मानकर उसके दिव्य अवतारी रूप की उपासना देश में प्रचलित हुई तो कृष्णोपासक भक्त-समुदाय विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। पाञ्चरात्र, भागवत, वासुदेव आदि विभिन्न-वैष्णव सम्प्रदायों की स्थिति इतिहासकारों ने स्वीकार की है।[1] कालान्तर में जब शाङ्कर वेदान्त की प्रतिक्रियास्वरूप वैष्णव भक्ति-आन्दोलन ने समस्त भारत में ज़ोर पकड़ा तो द्वैत, द्वैताद्वैत, तथा शुद्धाद्वैत के रूप में वेदान्त-सूत्रों की विभिन्न व्याख्या करनेवाले मध्व, निम्बार्क तथा विष्णु स्वामी के सम्प्रदाय (प्रचलित नाम वल्लभ- सम्प्रदाय) भी कृष्णोपासना के विभिन्न स्वरूपों को लेकर ही आगे आये।

१. विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य है—डॉ० रामकृष्णन गोपाल भण्डारकर रचित ग्रन्थ—Vaishnavism, Shaivism and Minor Religious Systems.

निश्चय ही वैष्णव सम्प्रदायों के मान्य श्रीमद्‌भागवतादि पुराणों तथा उनके ऊपर लिखी गई सुबोधिनी आदि टीकाओं तथा अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थों में कृष्ण का जैसा चित्रण किया गया, वह उनके महाभारत-प्रोक्त चित्रण से नितान्त भिन्न है, जिसमें न तो उनको अद्वितीय परात्पर ब्रह्म ही माना गया है और न उनकी विभिन्न शृंगारी लीलाओं का वासना-रञ्जित वर्णन ही मिलता है, जो पुराणकारों का प्रिय विषय रहा है। वैष्णव उपासना-प्रणाली भी कालान्तर में तन्त्र-प्रतिपादित वामाचार-पद्धति से प्रभावित हुई जिसके कारण वैष्णव-धर्म में परकीया भाव को स्थान मिला। ईश्वरीय प्रेम की अनन्यता के लिए स्त्री-पुरुष-प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया जाने लगा जिसकी परिणति दाम्पत्य-भाव या माधुर्य-भाव की उपासना में हुई। ऐसी स्थिति में वैष्णवों के उपास्य कृष्ण का रूप-परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक ही था। 'महाभारत' के कृष्ण जहाँ आर्य-मर्यादाओं के संरक्षक, संयमी, उदात्त चरित्रयुक्त, महान् सत्त्व-सम्पन्न मानव हैं, वहाँ पुराणों, काव्य-ग्रन्थों तथा साम्प्रदायिक साहित्य के कृष्ण गोपी-रमण, काम-क्रीड़ा-विशेषज्ञ, पर-दाराभिमर्षक हैं। 'श्रीमद्‌भागवत' तथा 'ब्रह्मवैवर्तादि' पुराणों, 'गीतगोविन्द' आदि काव्यों तथा 'गोपाल सहस्र नाम' जैसे स्तोत्र-ग्रन्थों में सर्वत्र कृष्ण के परदार-गामी स्वरूप का ही चित्रण किया गया है। भागवत, जो वैष्णव-सम्प्रदाय का सर्वप्रख्यात एवं मान्य ग्रन्थ है, कृष्ण की शृंगार-लीलाओं का स्पष्ट उल्लेख करता है। 'रासपञ्चाध्यायी' के अन्तर्गत जो प्रसंग चित्रित हुए हैं उन्हें पढ़कर कोई यह दावा नहीं कर सकता कि इन वर्णनों में वासनोत्तेजक स्थूल भावों का उल्लेख नहीं है। साधारण पाठकों की बात छोड़िये, 'भागवत' के प्रथम श्रोता राजा परीक्षित को भी कृष्ण के इस लोकविरुद्ध आचरण के विषय में शंका हुई थी जिसे पुराण-वक्ता शुकदेव के सम्मुख व्यक्त करते हुए उसने पूछा—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णो हि भगवांशेन जगदीश्वरः॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ताकर्ताभिरक्षिताः।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम्॥

(दशम स्कन्ध, पू० ३३।२७,२८)

हे ब्रह्मन्! आपने कहा था कि भगवान् जगदीश्वर धर्म की स्थापना

करने और अधर्म का प्रशमन करने के निमित्त अवतार लेते हैं। उन्होंने स्वयं धर्म-मर्यादा के प्रवक्ता, प्रस्तोता तथा रक्षक होकर किस प्रकार उसके विपरीत पर-स्त्री-स्पर्श रूपी महान् अधर्म का कार्य किया ?' इसके उत्तर में शुकदेव ने जो-कुछ कहा उसका सार यही है कि समर्थों को ऐसे दोष नहीं लगते जैसे सर्वहुत अग्नि में अच्छा-बुरा सभी-कुछ भस्म हो जाता है। परन्तु क्या यह उत्तर संतोषप्रद है ? गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'भागवत' के इन्हीं वचनों से प्रेरणा लेकर लिखा था—

समरथ को नहिं दोस गुसांई।
रवि पावक सुरसरि की नांई॥

'भागवत'-प्रोक्त कृष्ण का यह प्रतीप-आचरण उनके गीता-प्रोक्त निम्न मन्तव्य के सर्वथा विरुद्ध है, जिसमें कहा गया है कि 'श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का ही अनुकरण सामान्य जन करते हैं।' लोक-समाज उसे ही प्रमाण मानता है जिसे महापुरुषों ने प्रमाण माना है।[1] अतः लोक-नेताओं का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने आचार-व्यवहार में अत्यन्त संयम, तत्परता तथा सतर्कता बर्तें।

कृष्ण-चरित्र का पौराणिक शैली में विस्तार से वर्णन करनेवाले 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' ने तो राधा-कृष्ण के प्रेम-प्रसंगों को जिस अति-रञ्जनापूर्ण, किन्तु वासनोत्तेजक ढंग से चित्रित किया है, उसका उल्लेख करना भी शिष्टाचार के प्रतिकूल माना जा सकता है।[2] कवियों और स्तोत्रकारों ने तो 'हरिस्मरण' और 'विलास कला कुतूहल' को एक ही धरातल पर रखकर राधा-कृष्ण की जिन रहस-केलियों का वर्णन किया है वह उच्चकोटि के शृंगारी काव्य का उदाहरण भले ही माना जा सके, उससे कृष्ण-चरित्र का कोई प्रोज्ज्वल रूप पाठकों के सम्मुख आता हो, ऐसा नहीं माना जा सकता। 'गोपाल सहस्र नाम' ने भगवन्नाम-कीर्तन के व्याज से कृष्ण को निम्न विशेषणों से सम्बोधित किया है—

"गोपालः कामिनी-जारः चौर जार शिखामणिः"

---

१. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥—३।२१

२. विस्तार के लिए द्रष्टव्य—'ब्रह्मवैवर्तपुराण : एक समीक्षा', ले० डॉ० भवानीलाल भारतीय (सत्य प्रकाशन, मथुरा)

जब धर्म-ग्रन्थ कही जानेवाली पुस्तकों का यह हाल हो तो इतर काव्यादि ग्रन्थों की तो कथा ही क्या ! निरंकुश समझे जानेवाले कवियों ने तो मर्यादा को सर्वथा तिलाञ्जलि ही दे दी और कृष्ण-चरित्र के साथ खुलकर खेले । जयदेव ने संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली में राधा-कृष्ण के जिस परकीया-भाव के प्रेम का चित्रण किया, उससे प्रेरणा लेकर मैथिल-कोकिल विद्यापति तथा बंगला-कवि चण्डीदास ने राधा-माधव की केलिक्रीडा के नाम पर उद्दाम शृंगार की जो धारा प्रवाहित की, उससे समग्र पूर्वी भारत वासना-पंक से आप्लावित हो गया । मध्यदेश में रसिक कवि सूरदास ने वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित होते हुए भी, जिसमें कृष्ण के बाल-स्वरूप की उपासना का का ही विधान है, राधा-कृष्ण के प्रेम की जो व्यञ्जना की वह जयदेव और विद्यापति की तुलना में अधिक सुरुचि-सम्पन्न भले ही हो, परन्तु उनकी यह ब्रजभाषा-पदावली भी उद्दाम शृंगार से सर्वथा मुक्त ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता । हिन्दी के परवर्ती कवियों को तो राधा-कृष्ण के नाम पर स्वच्छन्दता प्रदर्शित करने का पूर्ण अवसर ही मिल गया । तभी तो हिन्दी-साहित्य के रीतिकालीन कवियों के लिए कृष्ण एक सामान्य रसिक नायक की भावभूमि पर उतर आये और विलास-लीलाओं के चित्रण में कुशल इन शृंगारी प्रवृत्ति के कवियों के लिए उनके चरित्र से खिलवाड़ करना अत्यन्त सहज हो गया । रीति-काल के आचार्य कहे जानेवाले कवि भिखारीदास के शब्दों में—

"आगे के कवि समुझिहैं तो कविताई,
न तु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।"

इस प्रकार भक्ति की झीनी आड़ में राधा-कृष्ण की विलास-केलि का नग्न चित्रण करना कवियों का नित्यप्रति का कार्य रह गया । कृष्ण-चरित्र में समाविष्ट होनेवाली यह दूसरी मलिन धारा है जिसने कृष्ण के लोकसंग्रही रूप को तो लुप्त किया ही, उसे सर्वथा वासना-पंकिल भी बना दिया ।

कृष्ण-चरित्र-विषयक एक और भ्रान्ति है जिसने लोगों के मस्तिष्क में जड़ जमा रक्खी है और जिसके कारण लोग कृष्ण को प्रवञ्चक, कपटी, युद्ध-लिप्सु और महाभारत के भीषण नरसंहार का मूल कारण समझने की भयंकर भूल कर बैठे हैं। इस भ्रान्ति का कारण 'महाभारत' की घटनाओं को प्रकारणानुकूल न समझना ही है । कृष्ण की शान्ति

प्रियता, उनकी विश्व-बंधुत्व की भावना तथा युद्ध के प्रति उनका सहज विराग-भाव लोगों से विस्मृत हो चुका है। उन्हें यह पता नहीं कि कृष्ण युद्ध की अनिवार्यता में विश्वास नहीं करते थे, अपितु किसी अपरिहार्य परिस्थिति में वे उसे समस्याओं के समाधान के अन्तिम साधन के रूप में भी तभी स्वीकार करते थे, जबकि समझौते के सभी अन्य साधन अकृत-कार्य हो जायँ। कृष्ण के लोक-पावन तथा जन-मंगल-विधायक चरित्र को दूषित करने का यह निकृष्ट प्रयास है कि उन्हें धूर्तताभरी चालोंवाला कपटाचारी और कूटनीतिज्ञ समझा जाय। इन्हीं भ्रममूलक धारणाओं के कारण आज कृष्ण का वास्तविक स्वरूप अंधकारावृत हो रहा है और हम उसकी कल्याणकारी प्रवृत्तियों को हृदयंगम करने में असमर्थ हो रहे हैं।

प्रश्न होता है कि कृष्ण-चरित्र की इस त्रिविध विकृति के लिए उत्तरदायी कौन है? निस्संकोच रूप से कहना पड़ेगा कि साम्प्रदायिक ग्रन्थ-लेखकों, पुराणकारों तथा वासना-रंजित भावनाओं का निर्बाध चित्रण करनेवाले कवियों के हाथों ही कृष्ण-चरित की यह अधोगति हुई है। जिन साम्प्रदायिक भावापन्न लेखकों ने मधुरा भक्ति के नाम पर राधा-कृष्ण की स्थूल प्रेम-भावना को रहस्य-साधना का जामा पहनाया, जिन कवियों ने गोपी-जन-वल्लभ कृष्ण का चित्रण कर उन्हें राधा के कुच-युगल के मर्दन में निपुण बताया, वे ही कृष्ण-चरित की विकृति के लिए उत्तरदायी हैं। परिणाम स्पष्ट है—कृष्ण का रसिक रूप ही लोकप्रिय हुआ। साधारण लेखकों की तो बात ही छोड़िये, बाल की खाल निकालनेवाले नैयायिकों ने भी अपने ग्रन्थों के मंगलाचरण में गोप-वधूटियों के वस्त्रों को चुरानेवाले कृष्ण का ही स्मरण किया।[1] जब तथाकथित दार्शनिक, धर्मशास्त्रकार तथा सम्प्रदाय-प्रवर्तक आचार्य ही कृष्ण के वास्तविक स्वरूप की विकृति के कारण बने तो उन सामान्य जनों को क्यों दोष दिया जाय जिनकी दृष्टि में कृष्ण परले सिरे के धूर्त, चालबाज़, लम्पट और व्यभिचारी थे? आज काव्य और संगीत में 'साँवरिया' और 'बनवारी' जैसे शब्द जो लम्पट नायक के लिए सामान्यतया प्रयुक्त होते हैं, उनका कारण भी यही है।

१. द्रष्टव्य—नूतन जलधर रुचये गोपवधूटीदुकूल चौराय।
तस्मै कृष्णाय नमः संसार महीरुहस्य बीजाय॥
विश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य रचित 'कारिकावली' का मंगलाचरण

यह और भी आश्चर्य की बात है कि कृष्ण के प्रति इतने कलुषित विचार रखते हुए भी साधारण जनता उन्हें ईश्वरावतार समझती है।

काव्य, पुराण-वर्णित कृष्ण के इस विकृत स्वरूप का ईसाई मत-प्रचारकों ने किस प्रकार अतिशयोक्ति एवं अतिरञ्जना का पुट लगाकर चित्रित किया, यह बताना भी आवश्यक है। यूरोपीय जातियों के भारत में प्रवेश के साथ ही ईसाई प्रचारकों ने भारत को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। इस देश के वासियों को स्व-धर्म, स्व-भाषा और स्व-संस्कृति से विस्मृत कराने के लिए उन्होंने किन-किन साधनों को अपनाया, इसका विस्तृत वर्णन देना यहाँ आवश्यक नहीं है; परन्तु, यह ध्यान रहे कि पुराण-वर्णित हिन्दू देवी-देवताओं की चारित्रिक त्रुटियों और उनके आचार-सम्बन्धी स्खलनों का दिग्दर्शन करानेवाली अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकों की रचना कर उन्हें अबोध जनता में प्रचारित करना और इस प्रकार उनके हृदय में अपने परम्परागत मत-विश्वासों के प्रति अनास्था उत्पन्न कराना भी उनके कार्यक्रम का एक प्रमुख अंग था और अब भी है। इस प्रकार की अनेक घृणित, आपत्ति-जनक पुस्तकें समय-समय पर ईसाई प्रकाशन-केन्द्रों से प्रकाशित होती रही हैं।

इन पुस्तकों में पुराणों और काव्यों के आधार पर हिन्दुओं के मान्य देवी-देवताओं और विशेषतः कृष्ण की खूब छीछालेदर की जाती है और उन्हें दुराचारी, लम्पट, धूर्त तथा कपटी बताया जाता है। इस कथन को सिद्ध करने के लिए कतिपय उद्धरण देने आवश्यक हैं। बिशप काल्डवेल ने लिखा है—"श्री कृष्ण के जीवन के विषय में जो कथाएँ पुराणों में बताई जाती हैं, उनका हिन्दू युवकों के चरित्र का नाश करने और उनकी कल्पनाओं को भ्रष्ट करने में सबसे अधिक भाग है।"[1] रेवरेण्ड मर्रे मिकल ने अपनी पुस्तक 'Letters to Indian Youths' ('भारतीय युवकों के नाम पत्र') में एक स्थान पर लिखा है—"ब्रह्मा, इन्द्र, कृष्ण आदि देवों के जो इतिहास, विशेषतया पुराणों में बयान किये गये हैं, वे किसी भी शुद्ध-पवित्र मन के व्यक्ति के लिए घृणाजनक हैं। मैं उनके निन्दनीय कार्यों के वर्णन से अपने पृष्ठों को कलंकित करने का साहस नहीं कर सकता। यदि ऐसे कार्य, जो इन

१. आर्यजगत् (साप्ताहिक), जालंधर (वर्ष १२, संख्या ३१) से उद्धृत

देवों के द्वारा किये गये माने जाते हैं, मनुष्यों ने किये होते तो हममें से प्रत्येक भय और लज्जा के मारे स्तब्ध हुए बिना नहीं रहता।"[१]

टी० ए० एम० गर्बियर (T.A.M. Gerbier) नामक एक कैथॉलिक पादरी ने अपनी पुस्तक 'Dialogues or Hindu Religion' में हिन्दू देवताओं के प्रति खूब विष उगलने के पश्चात् कृष्ण के विषय में लिखा— "When meeting a woman alone, he was in the habit of following her until he found a spot suited for his evil purpose and then he would outrage her......However abominable may be the dealings of Krishna, the Hindus are not ashamed to celebrate them in innumerable disgraceful poems. Is it not astounding that they should worship as God a person guilty of many abomination?"[२] इसी पुस्तक में आगे लिखा गया है— "Krishna's adulteries and murders are known to the wide world."[3] अर्थात् कृष्ण किसी स्त्री को एकान्त में पाकर उसका पीछा करता और किसी विविक्त स्थान में उसका सतीत्व नष्ट कर देता था। कृष्ण के कार्य चाहे कितने ही घृणास्पद क्यों न हों, हिन्दू लोग अपनी अगणित असभ्यतापूर्ण कविताओं में उसका वर्णन करते नहीं लजाते। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वे एक ऐसे व्यक्ति को ईश्वर मानकर पूजा करते हैं जो अनेक अपराधों का अभियुक्त है तथा कृष्ण के दुराचार और हत्याओं के कृत्य विश्व में सर्वत्र विदित हैं?

पुराण-गाथाओं की आलंकारिक व्याख्या

पुराण-वर्णित कृष्ण-चरित के आध्यात्मिक व्याख्याकारों की यह धारणा है कि 'भागवत' तथा 'ब्रह्मवैवर्त' आदि पुराणों में जो शृंगार-लीलायें वर्णित हैं, वे उनके स्थूल अर्थों में ग्राह्य नहीं होनी चाहियें। इन गाथाओं की आलंकारिक व्याख्या करनी आवश्यक है। उनके अनुसार गोपियों और कृष्ण की प्रेम-क्रीड़ायें आत्मा और परमात्मा के परस्पर नैकट्य की सूचक हैं। इसी प्रकार राधा और कृष्ण की प्रेम-लीला प्रकृति और पुरुष की क्रीड़ा का प्रतीक है। अन्य प्रकार की रहस्यपूर्ण व्याख्याएँ भी पुराणों के उन आधुनिक टीकाकारों ने प्रस्तुत की हैं जो

१. आर्यजगत् (साप्ताहिक) जालंधर (वर्ष १२, संख्या ३१) से उद्धृत।
२. पृ० ७१
३. पृ० ३२७

इन ग्रन्थों के स्थूल, संभोगात्मक प्रसंगों के औचित्य को किसी-न-किसी रूप में सिद्ध करना चाहते हैं। वर्तमान समय में गोरखपुर का 'गीता-प्रेस' प्रचलित पौराणिक धर्म का महान् प्रचार-केन्द्र है। यहाँ से विभिन्न पुराणों के संस्करण तो प्रकाशित हुए ही हैं, इस संस्थान के लेखकों की यह भी चेष्टा रही है कि पुराण-वर्णित कृष्ण के ऊपर आनेवाले लांछनों और आरोपों का परिमार्जन करने के लिए उन कथा-प्रसंगों की बुद्धि-संगत, युक्तियुक्त व्याख्या की जाय।[1] उनके परिश्रम का मुख्य अभिप्राय यह है कि कृष्ण से सम्बद्ध जो उद्दाम शृंगार-प्रधान प्रसंग तथा वासना-रंजित कथाएँ 'भागवत' अथवा अन्य पुराणों में आई हैं, उन्हें आत्माराम भगवान् की अलौकिक क्रीड़ा बताकर उनके आध्यात्मिक प्रतीकात्मक अर्थ किये जायँ, ताकि पुराणों के इन प्रसंगों को सर्वथा निर्दोष सिद्ध किया जा सके।

'थियोसोफ़िकल सोसाइटी, अड्यार' से भी कुछ पुस्तकें ऐसी प्रकाशित हुई हैं जिनमें राधा-कृष्ण के प्रेम की व्यंजना आध्यात्मिक भूमिका पर की गई है। सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने भी एक लेख[2] में राधा-कृष्ण के पुराणोक्त वर्णनों को सर्वथा निर्दोष, निष्पाप तथा भक्ति का व्यंजक मानते हुए 'ब्रह्मवैवर्त'-पुराण की कथाओं को अश्लीलता से रहित कहने का साहस दिखाया था, यद्यपि यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके जैसा बहुश्रुत और बहुपठित व्यक्ति पुराणों की अश्लील गाथाओं से सर्वथा अपरिचित ही रहा हो।

कृष्ण-चरित के इन नवीन व्याख्याकारों को लक्ष्य में रखकर स्वामी दयानन्द के जीवनी-लेखक बंगाली विद्वान् पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने ठीक ही लिखा है—"आजकल के विकृत और वैज्ञानिक व्याख्या-बहुल समय में कोई-कोई अतिबुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति कृष्ण-चरित्र के सम्बन्ध में पुस्तक और प्रबंधादि लिखकर सिद्ध करना चाहते हैं कि रासलीला के उपलक्ष्य में कृष्ण ने व्रज की गोपियों के साथ मैथुनादि कुछ भी नहीं किया था। रासलीला के शेषांश में परीक्षित के प्रश्नों के उत्तर में शुकदेव तक ने, यहाँ तक कि श्रीधर स्वामी और जीव गोस्वामी प्रभृति टीकाकारों ने भी माना है कि कृष्ण ने ब्रज की स्त्रियों के साथ

१. द्रष्टव्य—'गोपीप्रेम', ले० श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार।
२. साप्ताहिक आर्यमित्र (लखनऊ), २६ जून १९५२ में प्रकाशित।

व्यभिचार किया था। तब 'तेजीयसां न दोषाय वह्ने सर्वभुजो यथा' अर्थात् सर्वभुक् वह्नि-समान तेजस्वी पुरुषों को दोष नहीं होता, एवं 'ईश्वराणां वचः सत्यं तथैव चरितं क्वचित्' अर्थात् ईश्वरीय शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों का वचन ही मान्य होता है; उनका आचरण सब काल में मान्य वा अनुकरणीय नहीं होता; इस प्रकार कुछ मानकर कुछ न मानकर उत्तर देने से शुकदेव ने परीक्षित के प्रश्नों से अपने को बचाने की चेष्टा की है। परन्तु यह सब बुद्धिमान् व्यक्ति स्वीकार करेंगे कि इस प्रकार का टालमटोल का शुकदेव का उत्तर किसी प्रकार भी युक्तियुक्त और विचारसिद्ध नहीं है। फलतः ये अतिबुद्धि-सम्पन्न लेखकगण अपनी विकृत और स्वकपोल-कल्पित व्याख्या द्वारा रासलीला के कृष्ण को सफेदी (whitewash) करके कुछ उज्ज्वल करने के संकल्प से बारंबार कितनी ही चेष्टा करें, परन्तु हम एक बार नहीं सौ बार कहेंगे कि उनकी यह चेष्टा और इस प्रकार का उद्योग मिथ्या चेष्टा और मिथ्या उद्योग-मात्र है।"[१]

वादि-तोष-न्याय से यदि यह मान भी लिया जाय कि कृष्ण-गोपी-प्रसंग सर्वथा आध्यात्मिक और असांसारिक है तथा इसमें स्थूल वासना की गंध-मात्र भी नहीं है, कृष्ण और गोपियों की जिन क्रीड़ाओं का वासना-सिक्त वर्णन पुराणों और काव्यों में है, वे भी सर्वथा निर्दोष हैं, यह आत्माराम कृष्ण की अपनी विभूतियों से अलौकिक लीला और क्रीड़ा-मात्र है, तो भी समस्या का कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं होता। यह तो सम्भव है कि पुराण-गाथाओं की नूतन व्याख्या करनेवाले स्वयं अपनी रहस्यपूर्ण कल्पना-प्रवण बातों से संतुष्ट हो जायँ, यह भी सम्भव है कि कुछ भावनाशील पाठक भी इन व्याख्याओं को स्वीकार कर लें, परन्तु इतना स्पष्ट है कि इससे न तो उन विधर्मी प्रचारकों के आक्षेपों का ही उत्तर दिया जा सकता है जो पुराण-वर्णित शृंगार-प्रसंगों के आधार पर हमारे पूज्य देवताओं और महापुरुषों को कलंकित करने के लिए उधार खाये बैठे रहते हैं और न उन करोड़ों अशिक्षित एवं अल्प-शिक्षित व्यक्तियों का ही समाधान होता है जिनमें कृष्ण के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के कुत्सापूर्ण प्रवाद प्रचलित हैं। वस्तु-स्थिति यह है कि सामान्य लोगों तक न तो पुराणों की ये आध्यात्मिक

१. विरजानन्द चरित, पृ० १७०-१७१, आर्यप्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित।

व्याख्यायें ही पहुँच पाती हैं और न वे कृष्ण-गोपी-सम्बन्धों का विश्लेषण करते समय उन्हें रूपकालंकार मानकर ही संतुष्ट होते हैं। गीता प्रेस के व्याख्याकार[1], 'रासपञ्चाध्यायी' के टीकाकार[2] अथवा पुराण-गाथाओं के नवीन भाष्यकार[3] चाहे ब्रज की गोप-बालाओं को वेदों की ऋचायें मानकर कृष्ण के साथ उनका आध्यात्मिक सम्बन्ध निरूपित करते रहें, परन्तु जन-मानस में बद्धमूल इस धारणा को निष्कासित नहीं किया जा सकता कि गोपियाँ परकीया स्त्रियाँ थीं तथा कृष्ण के साथ उनका अवैध प्रेम-सम्बन्ध था। जन-साधारण में प्रचलित इन धारणाओं से हमारे जातीय चरित्र का कितना भयंकर ह्रास हुआ है क्या इसका स्वल्प-अनुमान भी उन व्याख्याकारों ने किया है जो अपनी शुतुरमुर्गी मनोवृत्ति के कारण न तो परकीय धर्म-प्रचारकों के आक्षेपों का उत्तर देने में ही समर्थ हैं और न उनकी ये कल्पनाप्रधान व्याख्यायें जन-साधारण को ही आश्वस्त कर पाती हैं।

हमारी यह सुनिश्चित धारणा है कि जब तक कृष्ण के पावन चरित्र पर लगाये गये पुराणकारों के उपर्युक्त मिथ्या दोषों को स्पष्ट रूप से अस्वीकार नहीं किया जाता, तब तक कृष्ण का महनीय और उदात्त स्वरूप जन-समाज के समक्ष प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकेगा और न पूर्वाग्रह-ग्रस्त ईसाई प्रचारकों के अलीक किन्तु विषैले प्रचार को ही रोका जा सकेगा। कृष्ण-चरित्र को विकृत करनेवाले इन अनार्ष एवं आधुनिक ग्रन्थों को अमान्य घोषित करना ही होगा। साम्प्रदायिक उन्माद का पोषण करनेवाले पुराणों का जबतक प्रमाण किया जायगा तबतक कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का उद्‌घाटन अशक्य है। अतः यह आवश्यक है कि हम अपने पुरखों की अमल-धवल कीर्ति की सुरक्षा हेतु पूर्ण तत्पर रहें।

पुराण-वर्णित कृष्ण-चरित ने जन-मनोवृत्ति को किस प्रकार दूषित किया है, इसका दिग्दर्शन भी आवश्यक है। यह कहकर बरी नहीं हुआ जा सकता कि विधर्मी प्रचारकों की आक्षेप-प्रधान पुस्तकों का विचारशील लोगों पर प्रभाव ही कितना पड़ता है! निश्चय ही लाखों की संख्या में प्रकाशित होनेवाली इन पुस्तकों को ईसाई पादरी मेलों-त्योहारों और उत्सवों पर मुफ्त बाँटते हैं, जन-साधारण उन्हें पढ़ते हैं

१. स्व० हनुमानप्रसाद पोद्दार तथा जयदयाल गोयन्दका आदि।
२. महामहोपाध्याय मधुसूदन ओझा के शिष्य स्व० पं० मोतीलाल शास्त्री।
३. स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि।

और प्रभावित होते हैं। इन्हें अपने महापुरुषों के इन लोक-निंदित कृत्यों के प्रति घृणा होती है और वे परकीय धर्म की ओर आकृष्ट होते हैं। दूसरी ओर हिन्दू-धर्म के कथा-वाचक, पुराणपाठी, रासलीला करने-वाली स्वाँगधारी मण्डलियाँ कृष्ण की इन शृंगार-लीलाओं का अत्यन्त उत्तेजक और वासना-पंकिल वर्णन और प्रदर्शन जनता के सम्मुख रखते हैं। कहीं कृष्ण-वेषधारी वह गोपियों के साथ नृत्य कर रहे हैं तो कहीं वे एकान्त में राधा से प्रेम-याचना करते हैं। कहीं माखन-चोरी, दान-लीला और मान-लीला के दृश्य दिखाये जाते हैं। यही है कृष्ण-चरित्र जो आज देश के विभिन्न भागों में, विभिन्न भाषाओं में प्रदर्शित किया जा रहा है। बंगाल, मिथिला, व्रज, राजस्थान, गुजरात, सभी कृष्ण के नटनागर-स्वरूप पर मुग्ध हो रहे हैं और उनका सुदर्शन-चक्रधारी, अत्याचारियों को दमन करनेवाला तथा धर्मात्माओं को अभयदान देनेवाला मंगलकारी रूप जन-मानस से विस्मृत हो चुका है।

सामान्य जनता में आज भी कृष्ण को लेकर वैसे ही दूषित विचार व्याप्त हैं जो पुराणपाठी कथावाचकों तथा लीलाधारियों द्वारा प्रत्यक्ष-रूपेण और ईसाई पादरियों के द्वारा परोक्ष-रूपेण प्रसारित किये गये हैं। आप एक सामान्य व्यक्ति (a man in the street) से कृष्ण के विषय में जिज्ञासा कीजिये, वह आपको कृष्ण की माखन-चोरी, गोपियों के वस्त्रापहरण, ब्रजांगनाओं के प्रति उनकी क्रीड़ासक्ति अथवा छल-प्रपंचपूर्ण कृत्यों के द्वारा भीष्म, द्रोण आदि के वध कराने की बात ही कहेगा। वह कृष्ण की उदात्त आध्यात्मिक विचारधारा, उनकी योग-विवेचना तथा आर्य-आदर्शों की स्थापना की बात से सर्वथा अपरिचित ही है। यही कारण है कि गीता प्रेस के लेखकों, थियोसो-फ़िकल सोसाइटी के व्याख्याकारों अथवा पंडित सातवलेकर जी जैसे विद्वानों की आपाद रमणीय आध्यात्मिक व्याख्यायें न तो उसके गले ही उतरती हैं और न वह उन्हें समझ ही सकता है।

कृष्ण-चरित्र की इस अधोगति और उसके दुष्परिणामों पर विचार करते समय यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपनी धूर्तता, लम्पटता और व्यभिचार की दुष्प्रवृत्तियों को छिपाने अथवा उनका औचित्य प्रकट करने के लिए निर्लज्जतापूर्वक कृष्ण का उदाहरण देते हैं। धर्म की ओट में ऐसे

अपने-आपको कृष्ण मानकर अपने शिष्य-शिष्याओं से तन-मन-धन का समर्पण कराया[1], कलकत्ता-स्थित गोविन्द भवन का हीरालाल गोयनका सन्नारियों के सतीत्व को कृष्ण बनकर लूटता रहा।[2] अन्य भी न जाने कितने धूर्त और प्रवंचक लोग कृष्ण बनकर रासलीलायें कर रहे हैं और 'राधा-रमण' और 'गोपी-वल्लभ' की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं।

कई भोले भावुक ऐसे भी हैं जो एक ओर तो कृष्ण को साक्षात् ईश्वरावतार मानकर उनकी भक्ति करते हैं, उन्हें लीला-पुरुषोतम मानते हैं, परन्तु पुराणोक्त कृष्ण-चरित्र में उन्हें कोई असंगति नहीं दिखाई देती। जब उनसे पूछा जाता है कि एक ओर तो आप कृष्ण को साक्षात् भगवान् मानकर उनके प्रति असीम श्रद्धा-भाव रखते हैं और दूसरी ओर उनके लोक-मर्यादा-विनाशक पुराण-चरित्रों को भी सत्य मानते हैं, यह क्या गड़बड़झाला है? इसका उत्तर भी वे अपनी उसी भावुकतापूर्ण शैली में देते हुए कहते हैं—"नैष दोषः, कृष्ण षोडश कलायुक्त भगवान् हैं, वे सर्व-समर्थ हैं, अतः उनका गोपियों के प्रति जार-भाव भी निंदनीय नहीं है। ईश्वर को कोई बुराई नहीं व्यापती।" उनकी दृष्टि में कृष्ण का लीला-गायन तो हम करें परन्तु उनकी लीलाओं का अनुकरण कदापि न करें। ऐसी गलदाश्रु-भावुकता कथमपि श्लाघ्य नहीं कही जा सकती।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'महाभारत' में कृष्ण का जो लोकादर्श-समन्वित चरित्र उपस्थित किया गया था, उसे पुराणों और काव्यों में सर्वथा विकृत साम्प्रदायिक रूप में चित्रित किया गया है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय पुनर्जागरण के प्रमुख उद्गाता ऋषि दयानन्द ने जहाँ धर्म, समाज, राष्ट्र एवं संस्कृति के क्षेत्रों में एक चतुर्मुखी क्रान्ति का सूत्रपात किया, वहाँ उन्होंने अपनी सतर्क एवं क्रान्तदर्शी दृष्टि से कृष्ण जैसे महान् क्षमताशील पुरुष के चरित्र की महत्ता, दिव्यता तथा पावनता को भी देखा। उसमें उन्हें आप्त-पुरुषों के गुण दृष्टिगोचर हुए; साथ ही जन-साधारण में प्रचलित पुराण-प्रदिपादित कृष्ण का दूषित चरित्र भी उनके दृष्टिपथ में आया।

---

१. द्रष्टव्य—महाराज लाइबल केस अथवा 'पापमोचनी कथा', लेखक—स्व० पं० रामसहाय शर्मा।

२. द्रष्टव्य—'चाँद' का मारवाड़ी अंक।

अतः कृष्ण-चरित्र की सम्पूर्ण विकृति के लिए भागवतादि पुराणों को ही दोषी ठहराते हुए उन्होंने लिखा—"इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी, और कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रास-मण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुनाके अन्य मत-वाले श्री कृष्ण जी की बहुत-सी निंदा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निंदा क्योंकर होती?"[1]

स्वामी दयानन्द के कृष्ण-विषयक मत को प्रकारान्तर से सभी विचारशील पौरस्त्य एवं पाश्चात्य भारतविद्या-विशारदों ने स्वीकार किया है। दयानन्द के ही समकालीन बंगाली साहित्यकार बंकिमचन्द्र ने १८८६ ई० में कृष्ण-चरित की विशद एवं जीवन्त समालोचना कर उसका तात्विक विवेचन किया। वे भी उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचे जिन्हें सूत्र-रूप में दयानन्द ने उपस्थापित किया था। कृष्ण का वही इति-वृत्त प्रामाणिक और मान्य है जो 'महाभारत' में वर्णित है; पुराण-कथित कृष्ण-चरित्र को मान्यता नहीं दी जा सकती। कृष्ण-चरित्र को विकृत और कुत्सित करनेवाले साम्प्रदायिक लोगों की इस मनो-वृत्ति के प्रति घोर आक्रोश व्यक्त करते हुए बंकिम ने लिखा—"कृष्ण को हम लोग क्या समझते हैं? यही कि वे बचपन में चोर थे। दूध, दही, मक्खन चुराकर खाया करते थे, युवावस्था में व्यभिचारी थे और उन्होंने बहुतेरी गोपियों के पातिव्रत्य धर्म को नष्ट किया, प्रौढ़ावस्था में वंचक और शठ थे—उन्होंने धोखा देकर द्रोणादि के प्राण लिये। क्या इसी का नाम भगवच्चरित्र है?"[2] भारत के महाकाव्यों, देव-गाथाओं तथा उपाख्यानों का अध्ययन करनेवाले पी० थॉमस ने लिखा—"In this epic (Mahabharat) he appears as a diplomate and soldier and those accounts in it which are meant to deity him are considered interpolations. It is the Vishnu Purana and the Bhagvata that we read the various legends that speak of his divine nature."[3] अर्थात् 'महाभारत' में कृष्ण का चित्रण एक राज-नीतिज्ञ और सैनिक के रूप में हुआ है और वे वर्णन जो उन्हें ईश्वर

---

१. सत्यार्थप्रकाश, एकादश समुल्लास, पृ० ४२२ (आर्यसाहित्य मण्डल, चतुर्थावृत्ति)।

२. कृष्णचरित्र, पृ० २।

३. 'Epics, Myths and Legends of India', पृष्ठ ७१।

बताते हैं निश्चय ही प्रक्षिप्त हैं। 'विष्णुपुराण' और 'भागवत' में ही कृष्ण-सम्बन्धी वे कथायें हैं जो उनकी भगवत्ता को वर्णित करती हैं।

निष्कर्ष-रूप में हम कह सकते हैं कि कृष्ण का वास्तविक रूप वही है जो भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास की लेखनी से प्रसूत होकर 'महाभारत' में लेखबद्ध हुआ है तथा अन्य पुराणादि ग्रन्थों में कृष्ण के स्वरूप को विकृत करने की जो चेष्टायें हुई हैं उन्हें सर्वथा निर्मूल एवं निराधार ही माना जाना चाहिए। कृष्ण के वास्तविक चरित्र को लोक में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए दयानन्द और बंकिमचन्द्र जैसे मनीषियों के प्रति हमें कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिये।

अध्याय ११

राधा-कृष्ण

कृष्ण-सम्बन्धी पौराणिक वाङ्मय में राधा का विशिष्ट स्थान है। उसे कृष्ण की प्रेयसी के रूप में उल्लिखित किया गया है। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि राधा, कृष्ण की परिणीता पत्नी नहीं है। कृष्ण का विवाह तो विदर्भराज भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी के साथ ही हुआ था। तथापि, राधा और कृष्ण का अविनाभाव सम्बन्ध पौराणिक धर्म में स्थापित हो गया है। राधा के बिना कृष्ण की कल्पना भी असम्भव लगती है। उसे कृष्ण की प्रमुख शक्ति के रूप में कल्पित किया गया है और कहीं-कहीं इस प्रेमी-युग्म को पुरुष एवं प्रकृति का स्थानापन्न भी कहा गया है। कृष्ण-विषयक हमारा विवेचन शुद्ध ऐतिहासिक गवेषणा पर आधारित होने के कारण हमें इस प्रसंग को किसी आध्यात्मिक रहस्य अथवा रूपक-योजना के रूप में नहीं देखना है। हमारा प्रयत्न यह बताना होगा कि कृष्ण-विषयक पुरातन एवं मान्य साहित्य में तो राधा का कहीं भी उल्लेख नहीं है; हाँ, परवर्ती पुराणों, काव्यों तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उसकी चर्चा अवश्य मिलती है।

कृष्ण-चरित के मुख्य उपादानभूत 'महाभारत' तथा 'विष्णु' एवं 'भागवतपुराण' तक में राधा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। अकेला 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' ही राधा का उल्लेख करता है। 'भागवत' के टीका-कारों को जब मूल ग्रन्थ में 'राधा' का कोई संदर्भ नहीं मिला तो उन्होंने पाद-टिप्पणियों में राधा का नाम इस आधार पर जोड़ना आरम्भ कर दिया कि 'रास पंचाध्यायी' में, जहाँ कृष्ण का किसी विशेष गोपी के साथ अन्तर्धान होना लिखा है, वह विशिष्ट गोपी राधा ही थी।[1] भागवतकार का अभिप्राय यहाँ राधा से ही है, यह टीकाकारों

१. भागवत, १० पु०, अध्याय ३०

का अनुमान-मात्र है, क्योंकि किसी विशेष गोपी के साथ कृष्ण का ग़ायब हो जाना 'राधा' के अस्तित्व की सिद्धि का साधक नहीं हो सकता; हाँ, ऐसा सोचना गोपियों की ईर्ष्याजन्य मनःस्थिति में सम्भव तो है।

अतः, यह स्वीकार करने में कुछ भी शंका नहीं होनी चाहिए कि जो राधा आज वैष्णव भक्तों द्वारा 'स्वामिनी जी' और 'लाडिली जी' जैसे विरुद धारण कर कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के रूप में सर्वमान्य हो चुकी है तथा जिसके बिना कृष्ण की पौराणिक कल्पना अधूरी रहती है, उसका अस्तित्व भी 'महाभारत', 'हरिवंश', 'विष्णुपुराण' तथा 'भागवत' में नहीं है। जैसा कि हम देख चुके हैं 'राधा' का प्रथम बार उल्लेख 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में हुआ है। प्रो० विल्सन की सम्मति में यह पुराण सर्वथा नवीन है। बंकिमचन्द्र के अनुसार 'ब्रह्मवैवर्त' का प्रचलित संस्करण अधिक पुराना नहीं है। पं० वेंकटेशनारायण-तिवारी ने अपने एक लेख में इस पुराण के प्रचलित संकलन का काल सोलहवीं शताब्दी माना है।[1] 'मत्स्यपुराण' में 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' का जो लक्षण दिया गया है वह वर्तमान में उपलब्ध 'ब्रह्मवैवर्त' में घटित नहीं होता, इससे बंकिम का अनुमान है कि प्राचीन 'ब्रह्मवैवर्त' लुप्त हो गया और उसके स्थान पर यह नवीन ग्रन्थ प्रचलित हो गया। ख़ैर, कुछ भी हो, प्रचलित 'ब्रह्मवैवर्त' में ही राधा की प्रथम कल्पना की गई है और इसकी नवीनता सिद्ध हो चुकी है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से राधा-प्रसंग को कृष्ण के जीवन का एक प्रक्षिप्त अंश ही मानना होगा।

इस पुराण के अनुसार 'राधा' कृष्ण की अधिष्ठात्री शक्ति है। उसका कृष्ण से वैसा ही अविभाज्य सम्बन्ध है जैसा सांख्य-वर्णित पुरुष एवं प्रकृति का। आश्चर्य की बात तो यह है कि पुराणों के जो नवीन व्याख्याकार राधा-कृष्ण के पुराण-वर्णित अश्लील प्रसंगों का समाधान स्वकल्पित युक्तियों के आधार पर करना चाहते हैं, वे ऐसा करते समय यह भूल जाते हैं कि इस पुराण में तो राधा-कृष्ण का जो घोर शृंगारपूर्ण चित्र अंकित किया गया है, वह इतना अश्लील, वीभत्स एवं ग्राम्य है कि उसपर आध्यात्मिकता, अलौकिकता तथा दिव्यता

का कितना ही मुलम्मा क्यों न चढ़ाया जाय, वास्तविकता को छिपाना कठिन है। आगे के विवेचन से यह सब स्वतः ही स्पष्ट हो जायगा।

आज से कई वर्ष पूर्व प्रसिद्ध नाटककार तथा पारसी रंगमंच के कुशल लेखक पं० नारायणप्रसाद 'बेताब' ने 'राधा-कृष्ण का नाता' शीर्षक एक छोटी-सी पुस्तक लिखी थी। उसमें अत्यन्त मनोरंजक शैली में राधा और कृष्ण के परस्पर पिता-पुत्री, माता-पुत्र, पति-पत्नी और भाभी तथा ननद के पुत्र के सम्बन्ध 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के प्रमाणों से ही सिद्ध किये थे। अपने लेख के अन्त में लेखक अत्यन्त विनम्र भाव से भगवान् कृष्ण से ही पूछता है—कृपा कर बताएँ इनमें से आपका राधा से कौन-सा सम्बन्ध था? क्या ये सभी सत्य हैं या सभी असत्य? अथवा, इनमें से एक सत्य है और शेष असत्य? निष्कर्ष-रूप में लेखक यही कहता है कि राधा का पुराणोक्त वर्णन तथा कृष्ण से उसके प्रेम-सम्बन्ध का यह सम्पूर्ण प्रसंग ही कल्पनिक है और 'ब्रह्मवैवर्त' के अतिरिक्त कहीं अन्यत्र यह प्रसंग नहीं आया है।

यहाँ इस पुराण के आधार पर यह दिखाना आवश्यक है कि कृष्ण और राधा के पारस्परिक सम्बन्धों का उल्लेख उपर्युक्त प्रकार से करके पुराणकार स्वयं ही इसे असम्भव, मिथ्या और परस्पर-विरुद्ध बता रहा है।

राधा : कृष्ण की पुत्री

'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के ब्रह्मखण्ड के पाँचवें अध्याय में राधा की उत्पत्ति इस प्रकार बताई गई है—

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः॥ (२५)
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तमः॥ (२६)

अर्थात् "कृष्ण के वामपार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई। पुराकल्प को जाननेवाले ब्राह्मणों ने उसे 'राधा' नाम दिया।" अगले श्लोक में उसे कृष्ण की प्राणाधिष्ठात्री देवी कहा गया है तथा उसे कृष्ण के प्राणों से उत्पन्न माना गया है—

प्राणाधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी॥

(ब्रह्मखण्ड, ५। २७)

प्रथम तो राधा को कृष्ण के वाम पार्श्व से उत्पन्न बताना और उसके तुरन्त बाद उसे प्राणों से उत्पन्न बताना लेखक का उन्मत्त प्रलाप है। पार्श्व और प्राण एक वस्तु तो हैं नहीं। अवश्य ही पुराणकार ने यह भी ध्यान नहीं रक्खा कि वह पहले क्या लिख चुका और अब क्या लिख रहा है।

यही राधा, जो गोलोक में कृष्ण की शाश्वत संगिनी के रूप में रहकर चिरविहार करती है, श्रीदामा के शापवश मृत्युलोक में वृषभानु गोप की पुत्री के रूप में अवतीर्ण हुई। अब उसने माता कलावती के गर्भ से जन्म लिया—

वृषभानु सुता सा च माता तस्याः कलावती।

(कृष्ण पू०, खण्ड १३। ९२)

यहाँ भी इसे कृष्ण के अर्द्धांश से उत्पन्न कहा गया है—

श्रीकृष्णार्द्धसम्भूता तेन तुल्या च तेजसा॥

(कृ० पू०, खण्ड १७। २९)

यही बात अन्यत्र भी कृष्ण-जन्मखण्ड के पूर्वार्द्ध, अध्याय १७।२२९, अध्याय ४१।७२, उत्तरार्द्ध के अध्याय १२४।९४ में भी दुहराई गई है। इस वर्णन को देखते हुए यदि पं० बेताब ने राधा को कृष्ण की पुत्री ठहराया तो उसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। पुत्री को 'अंगजा' कहते हैं और उपर्युक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट हुआ कि राधा कृष्ण के अंग से ही उत्पन्न हुई थी, उसी प्रकार जैसे इस्लाम धर्म में आदम की पसली से हव्वा की उत्पत्ति मानी गई है। फिर इस पिता-पुत्री के सम्बन्ध को शृंगार में क्यों घसीटा गया ?

राधा : कृष्ण की पत्नी

अब हम उन प्रसंगों को देखें जिनमें राधा कृष्ण की पत्नी के रूप में वर्णित हुई है। प्रकृति खण्ड के ४८वें अध्याय में महादेव राधा को कृष्ण की पत्नी कहते हैं—

'स्वयं राधा कृष्ण-पत्नी कृष्ण-वक्षःस्थलास्थिता॥' (४७)

राधा और कृष्ण का विवाह स्वयं ब्रह्मा ने कराया, यह भी इस पुराण में अनेक स्थानों पर आया है। यथा—कृष्ण-जन्मखण्ड-पूर्वार्द्ध, अध्याय १५ में राधा और कृष्ण के विवाह का विस्तृत वर्णन है जिसमें यज्ञ-प्रदक्षिणा, पाणिग्रहण आदि सभी शास्त्रोक्त क्रियाओं का उल्लेख

है। अब किसी को यह शंका नहीं रह जानी चाहिए कि कृष्ण से विवाह वेदोक्त विधि से नहीं हुआ था। बाणासुर के आक्षेपों का उत्तर देते हुए कृष्ण-जन्मखण्ड के उत्तरार्द्ध, अध्याय ११५ में अनिरुद्ध स्वीकार करते हैं कि इस विवाह में ब्रह्मा ने ही पौरोहित्य किया था—

पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः। (८८)

सिद्ध हुआ कि राधा कृष्ण की विवाहिता पत्नी थी।

राधा : कृष्ण की मामी

अब इन दोनों के तीसरे प्रकार के सम्बन्ध को देखें!—प्रकृतिखण्ड अध्याय ४९ में निम्न श्लोक मिलते हैं—

राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारतं सती।
वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह॥ (३५)

वाराह-कल्प में राधा गोकुल जाकर वृषभानु की कन्या बनी—

अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्।
सार्द्धं रायाण वैश्येन तत्सम्बन्धं चकार स॥ (३७)

जब वह १२ वर्ष की होकर यौवन को प्राप्त हुई तो रायाण वैश्य से उसका विवाह-सम्बन्ध कर दिया गया। यह रायाण कौन था? ब्रह्म-वैवर्तकार कहता है—

कृष्णमातुर्यशोदा या रायाणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोप कृष्णांशः सम्बन्धात्कृष्णमातुलः॥ (४०)

अर्थात् 'कृष्ण की माता यशोदा का भाई रायाण था, जो गोलोक में तो कृष्ण का ही अंशभूत एक गोप था, किन्तु यहाँ मर्त्यलोक में वह कृष्ण का मामा था।'

यहाँ पुराणकार ने एक चालाकी अवश्य की है। यदि वह प्रकटतः एक ओर तो रायाण को राधा का विवाहित पति बताता और उधर ब्रह्मा द्वारा कृष्ण के साथ राधा का विवाह कराया जाना भी लिखता तो राधा का बहुपतित्व स्वतः ही सिद्ध हो जाता। सम्भवतः इसी आपत्ति को दूर करने के लिए उसने 'छाया राधा' की कल्पना की। इसी अध्याय का ३८वाँ श्लोक है—

छायां संस्थाप्य तद् गेहे साऽन्तर्धानमवाप ह।
बभूव तस्य वैश्यस्य विवाहश्छायया सह॥

अर्थात् 'वह राधा अपनी छाया को घर में रखकर स्वयं अन्तर्धान हो गई, उसी छाया के साथ रायाण का विवाह हुआ।' इसी 'छाया राधा'

की कल्पना के बल पर पं० दीनानाथ शास्त्री सारस्वत ने 'सनातन-धर्मालोक' के छठे पुष्प में पुराण-वर्णित इस कलंक-गाथा के मार्जन का असफल प्रयास किया है। उनके अनुसार वास्तविक राधा तो कृष्ण के साथ ही रही और छाया ही रायाण की पत्नी बनी—

स्वयं राधा हरेः क्रोडे छाया रायाण-मंदिरे। (४२)

कृष्ण-जन्म उत्तर खण्ड में भी इसी प्रकार का उल्लेख निम्न श्लोकों में आया है। यहाँ कृष्ण कहते हैं—

मत्कलांशश्च रायाणस्त्वां विवाहे ग्रहीष्यति। (८६।३६)
विवाह काले रायाणस्त्वां च छायां ग्रहीष्यति॥ (३८)

'मेरी कला का अंश रायाण ही तुम्हें ग्रहण करेगा, तुम्हें नहीं; बल्कि तुम्हारी छाया को ही विवाह के अवसर पर वह पत्नी-रूप में स्वीकार करेगा।' फलतः

स्वयं राधा मम क्रोडे छाया रायाण-कामिनी॥ (८६।४०)

'राधा तो मेरे वक्ष पर ही रहेगी, केवल उसकी छाया ही रायाण की पत्नी बनेगी।' राधा स्वयं भी उक्त खण्ड के १११वें अध्याय में कहती है—

अहमेव स्वयं राधा छाया रायाणकामिनी। (५७)

'मैं ही राधा हूँ, रायाण-पत्नी तो मेरी छाया है।' अब यहाँ दो बातें वक्तव्य हैं—प्रथम तो बेचारे रायाण को धोखे में रक्खा गया। उसे वास्तविक राधा के स्थान पर उसकी छाया को ही पत्नी बनाकर संतोष करना पड़ा। छाया-राधा से वह किस प्रकार संतुष्ट हुआ होगा, यह पौराणिकों के लिए अन्वेषणीय है। कृष्ण का भी यहाँ छलपूर्ण आचरण स्पष्ट होता है। उन्होंने वास्तविक राधा को तो अपनी प्रेयसी बनाये रक्खा और उसकी छाया का विवाह रायाण से करा दिया। कुछ भी हो, यह तो मानना ही पड़ेगा कि 'छाया राधा' का प्रपंच इसीलिए खड़ा किया गया है जिससे कि कृष्ण के 'मातुल-पत्नी-गमन' के पाप का परिमार्जन किया जा सके। उक्त अपराध का मार्जन कितना हुआ या नहीं हुआ, यह तो उन लोगों के लिए सोचने का विषय है जो पुराणों की मिथ्या गाथाओं को आँख मूँदकर प्रामाणिक स्वीकार करते हैं, परन्तु हम तो इस सारे प्रसंग को ही मिथ्या कल्पना मानते हैं। जब राधा ही पुराणकारों की कल्पना-विलास से जन्मी तो 'छाया-राधा' तो वैसे ही मिथ्या सिद्ध हो गई।

राधा : कृष्ण की माता

राधा और कृष्ण को एक अन्य विचित्र स्थिति में भी पुराणकार ने चित्रित किया है। पुराण लिखता है कि उस समय कृष्ण छोटे बालक ही थे। एक बार नन्द उन्हें लेकर भाण्डीर वन में गोचारण हेतु गये। वहाँ अचानक ही आकाश मेघावृत हो गया और झंझावात का शब्द सुनाई पड़ने लगा। मूसलाधार वृष्टि भी होने लगी। तब नन्द को यह चिन्ता हुई कि बालक कृष्ण को सुरक्षित रूप से घर तक कैसे पहुँचाया जाय ? अचानक राधा वहाँ आ पहुँची। नंद ने रोते हुए बालक को उसे दे दिया। राधा कृष्ण को लेकर चली गई। अब विचार करने की बात है कि राधा पूर्ण यौवन-सम्पन्ना युवती है और कृष्ण उसकी गोद में पुत्र के तुल्य बालक हैं। क्या यह माता-पुत्र का सम्बन्ध नहीं है ? परन्तु पुराणकार को इतना लिखकर ही सन्तोष नहीं हुआ। उसने आगे जो कुछ लिखा उसका सार यह है—

राधा ने कृष्ण को गोद में लेकर काम-वासना का अनुभव किया। उसका शरीर रति-भाव के उत्पन्न होने के कारण कंटकित हो गया। तुरन्त उसने रास-मण्डप को स्मरण किया, जिसके फलस्वरूप एक रास-मण्डप स्वतः ही बन गया और उसमें सभी प्रकार की वासनोत्तेजक सामग्रियाँ उपस्थित हो गईं। बालक कृष्ण भी एक परम रूपवान् नवयुवक के रूप में परिवर्तित हो गये और उसके पश्चात् ... जो कुछ होना था वहीं हुआ। यहाँ पुराणकार खुलकर खेला है। राधा-कृष्ण का जो संभोग-वर्णन इस पुराण में मिलता है वह अपनी अश्लीलता तथा ग्राम्य वर्णनों की दृष्टि से अद्वितीय है। जो लोग ऐसे गर्हित तथा शिष्ट रुचि के प्रतिकूल वर्णनों को पुराणों में देखते हुए भी इन ग्रंथों को व्यास मुनिकृत धर्म-ग्रंथों की संज्ञा देते हैं, उनकी बुद्धि पर तरस आता है। यदि 'ब्रह्मवैवर्त' जैसे वासनोत्तेजक शृंगार-वर्णनों से भरपूर ग्रंथ को भी धर्म-शास्त्र की संज्ञा दी जा सकती है तो काम-शास्त्र किसे कहा जायगा ? इसी अध्याय के कुछ ऐसे ही श्लोक नमूने के लिए प्रस्तुत हैं—

करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि।
चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम्॥ (१४८)

'कृष्ण ने राधा को हाथ से पकड़कर अपने वक्ष से लगा लिया और उसके वस्त्र शिथिल कर उसका चतुर्विध चुम्बन किया।'

बभूव रतियुद्धेन विच्छिन्न क्षुद्रघण्टिका।
चुम्बनेनोष्ठरागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ।। (१४९)

'जो रतियुद्ध हुआ उससे राधा की करधनी टूट गई। चुम्बन से अधरों का रंग उड़ गया और आलिंगन से पत्रावली नष्ट हो गई।'

मूर्च्छामवाप सा राधा बुबुधेन दिवानिशम् ।। (१५१)

'नवसंगम से राधा मूर्च्छित हो गई तथा रात-दिन तक उसे होश ही नहीं आया।'

शृङ्गाराष्ट्रविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित् । (१५१)

'काम-शास्त्र के जाननेवाले कृष्ण ने आठ प्रकार का शृंगार किया।' संभोग के पश्चात् कृष्ण ने पुनः शिशु का रूप धारण कर लिया—

बभूव शिशुरूपं च कैशोरं च विहाय च ।। (१६३)

उसी बालक को पुनः अपने अंक में लेकर राधा यशोदा के निकट गई और बोली—

गृहाण बालकं भद्रे स्तनं दत्वा प्रबोधय। (१७५)

'हे कल्याणी, अपने बालक को लो और स्तन्यपान कराकर इसे सावधान करो।'

अब कोई भी व्यक्ति विरोधाभास देख सकता है कि माता के तुल्य राधा ने कृष्ण को स्व-क्रोड़ में लेकर उसके प्रति प्रथम तो वात्सल्य-भाव प्रकट किया, परन्तु नंद से कृष्ण को गोद में लेने और उसे वापस यशोदा को लौटाने तक की अवधि में जो एक विचित्र संभोग-काण्ड घटित हो गया, उसका विस्तृत विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

परन्तु पुराणों के समर्थकों को ऐसे परस्पर-विरुद्ध प्रतीत होनेवाले तथा महापुरुषों के चरित्र को विकृत रूप में पेश करनेवाले कथानकों को पढ़कर भी कोई ग्लानि नहीं होती। जो लोग 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' के उपर्युक्त प्रसंगों को पढ़कर भी राधा और कृष्ण के प्रेम को वासना-पंक से सर्वथा रहित एवं विशुद्ध आध्यात्मिक भावापन्न मानते हैं, उनकी विचार-शक्ति के प्रति खेद ही प्रकट किया जा सकता है।

राधा के तथाकथित आलंकारिक रूप की समीक्षा करने से पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि 'ब्रह्मवैवर्त' में अवतारवाद का सिद्धान्त एक अभिनव रूप में उपस्थित हुआ है। अब तक की मान्यता तो यह थी कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं, परन्तु 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' ने नक्शा ही पलट दिया। यहाँ कृष्ण ही अनादि चिन्मय ब्रह्म ठहराये गये हैं तथा

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को उनकी कृति माना गया है। इस पुराण के अनुसार कृष्ण का निवास गोलोक में है जहाँ वे अपनी आद्या शक्ति राधा के साथ निवास करते हैं। गोलोक में राधा के अतिरिक्त अन्य गोपियाँ भी रहती हैं। इनमें एक विरजा नामक गोपी भी है। विरजा के साथ कृष्ण ने राधा के अनजाने रति-प्रसंग किया। जब राधा को इस बात का पता चला तो वह तुरन्त घटनास्थल पर आई, परन्तु उसके पहुँचने के पहले ही अपराधी तो फ़रार हो चुका था। कृष्ण अन्तर्धान हो गये और विरजा ने योग-बल से शरीर त्यागकर नदी का रूप धारण कर लिया। कृष्ण ने जब अपनी प्रिया को नदी-रूप में देखा तो उच्च स्वर से रोने लगे। पुराणकारों ने तो कृष्ण के रुदन को भी भगवान् की लीला ही माना है। इसके पश्चात् कृष्ण की आज्ञा से विरजा ने पुनः स्त्री-शरीर धारण किया और कृष्ण के साथ रति-क्रीड़ा में लीन हो गई। विरजा और कृष्ण का यह संभोग-वर्णन तो नग्नता की दृष्टि से सीमा का अतिक्रमण कर जाता है। पुराण के इसी कामुकतापूर्ण श्रृंगार-वर्णन को देखकर वेंकटेशनारायण तिवारी को लिखना पड़ा—"भौतिक लीलाओं के वर्णन की नग्नता और कामुकता में यह कहना असम्भव है कि कौन किससे और कितना आगे बढ़ गया।"[1]

कृष्ण को पर-स्त्री में आसक्त देखकर राधा आपे से बाहर हो गई। उसने कृष्ण की शान में जो कुछ कहा उसे सम्पूर्णतया लिखना हमारा प्रयोजन नहीं है, परन्तु एक-दो श्लोक नमूने के रूप में लिख देते हैं—

हे कृष्ण विरजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे।
कथं दुनोषि मां लोल रति-चौर-लम्पट ॥ (३।५९)

'हे विरजा के प्यारे, मेरे निकट से दूर हो जाओ! हे रति-चोर लम्पट, मुझे क्यों कष्ट देते हो?' पुनः वह कहती है—

शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम्।
अथवा वनमालां वा रूपेणाऽप्रतिमाम् व्रज ॥ (३।६०)
हे नदीकान्त देवेश देवानां च गुरोर्गुरो।
मया ज्ञातोऽस्मि भद्रं ते गच्छ गच्छ ममाश्रमात् ॥ (३।६१)
हे सुशीले शशिकान्ते हे पद्मावति माधवी।
निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमत्राऽस्य प्रयोजनम् ॥ (३।६२)

---

१. 'सरस्वती' में प्रकाशित लेख।

राधा ने कृष्ण के लिए रति-चोर, लम्पट, धूर्त जैसे शब्दों का प्रयोग किया। अपशब्दों की मानो धारा ही बहा दी। एक अन्य प्रसंग में भी कृष्ण को बुरा-भला कहने में राधा ने कोई कसर नहीं रक्खी। प्रकृति-खण्ड के ११वें अध्याय में जो गंगाविषयक उपाख्यान है उसमें भी कृष्ण को गंगा के साथ प्रेम करते देखकर राधा फटकारती है और चेतावनी देते हुए कहती है—

संगृह्येमां प्रियामिष्टा गोलोकाद् गच्छ लम्पट।
अन्यथा नहि ते भद्रं भविष्यति सुरेश्वर॥ (११।४५)

'अपनी इस प्रिया को लेकर, हे लम्पट, इस गोलोक से चले जाओ, अन्यथा अच्छा नहीं होगा।' पुराण के इस प्रसंग पर तिवारी जी ने ठीक ही लिखा है—"मृत्युलोक में जैसे, वैसे ही स्वर्ग में भी सौतों में लड़ाई होती है और एक से अधिक पत्नियों के पति चाहे विष्णु ही हों, उनका जीवन इस सौतिया-डाह के कारण कष्टमय हो जाता है।" तब यह कृष्ण का गोलोक क्या हुआ, किसी राजा या नवाब का अन्तःपुर हो गया! और कृष्ण परमात्मा क्या हुए, उनकी स्थिति तो बहुपत्नियों से पीड़ित लम्पट-कामी राजा की-सी हो गई! तिवारी जी का इस सम्बन्ध में यह कथन कितना मार्मिक है—"गोलोकस्थ परमात्मा श्रीकृष्ण की लम्पटता का इतना निश्शंक वर्णन पढ़कर मेरी तो बुद्धि चकरा जाती है। सोलहवीं सदी के नवाब और राजा-महाराजा जिस तरह लम्पटता करते थे और उनके रणवासों में जैसा जीवन रानियों को बिताना पड़ता था, उसी को आदर्श मानकर इस पुराण-लेखक ने जगत्पिता श्री कृष्ण के गोलोक की जीवनचर्या में व्यक्त करने की इच्छा की है।"

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के उपर्युक्त सभी प्रसंग राधा-कृष्ण की विलास-लीला का जिस शैली में वर्णन करते हैं वह अत्यन्त ग्राम्य तथा संस्कृति-रुचि के प्रतिकूल है। इन वासनोत्तेजक वर्णनों को पढ़कर कोई भी यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि यह पुराण व्यास-जैसे विद्वान्, संयमी तथा तपस्वी ऋषि की रचना है। यह सब होने पर भी लोगों को, खास तौर से भक्तजनों को राधा और कृष्ण के सम्बन्ध में भक्ति-सम्बन्धी बड़ी-बड़ी आडम्बरपूर्ण बातें कहते सुना जाता है। वे यह कहकर पुराणों की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं कि ये सब प्रसंग आध्यात्मिक भावों से ओत-प्रोत हैं। ऐसे लोगों के कथन का सारांश इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) राधा और कृष्ण का सम्बन्ध अलौकिक और दिव्य है। इसमें किसी प्रकार की मांसलता एवं स्थूलता नहीं है।

(२) प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्व० पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अपने एक लेख में लिखा था कि राधा का कृष्ण के प्रति पवित्र भक्ति-पूर्ण सम्बन्ध था। उसमें कामुकता के भावों को देखना भूल है।[1]

(३) बंकिम जैसे कृष्ण-चरित्र के गम्भीर आलोचक यद्यपि राधा के अस्तित्व को पुराण-लेखकों का कल्पना-विलास मात्र समझते हैं, परन्तु पुराणों के मिथ्या उपाख्यानों को एकदम त्याग देने के साहस के अभाव में वे इसे पुरुष और प्रकृति का रूपक मानते हैं। बंकिम ने राधा-कृष्ण-मिलन की घटना का आरम्भिक भाग तो 'कृष्ण जन्म खण्ड' से उद्धृत कर दिया, परन्तु 'ब्रह्मवैवर्त'-वर्णित राधा-कृष्ण के स्थूल विलास का वर्णन करने का साहस उन्हें भी नहीं हुआ। उन्होंने इतना लिखकर ही अपनी लेखनी को विराम दिया—"राधा-कृष्ण के व्याह के बाद किसी वर्णन को यह कहना व्यर्थ है कि 'ब्रह्मवैवर्त' की रासलीला वस यथैव है।"[2]

पं० सातवलेकर जी के उपर्युक्त विचार के सम्बन्ध में तो इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि "नैष स्थाणोरपराधः यदेन यं न पश्यति"। "यदि 'ब्रह्मवैवर्त' के शृंगारी प्रसंगों की नग्नता को देखकर भी कोई उसे दृष्टि से ओझल करना चाहे तो इसका क्या उपाय है?" पुराणों ने तो कृष्ण-चरित को कलंकित करने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। कृष्ण की शान में इसी 'ब्रह्मवैवर्तपुराण' में लिखे गये निम्न श्लोकों की बानगी भी देखिये—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परमलम्पटः।
आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च॥

(कृष्ण जन्म खण्ड, उ० ११५।६१,६२)

'कृष्ण गोपियों के साक्षात् जार, दुष्ट तथा अत्यन्त लम्पट थे। उन्होंने मथुरा में जाकर कुब्जा को मैथुन से मार डाला।'

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' का ही दूषित प्रभाव जयदेव, विद्यापति तथा चंडीदास पर पड़ा। चैतन्य की कीर्तन-मण्डली भी उससे अप्रभावित नहीं रही। हिन्दी के सूरदास आदि कवियों ने भी 'ब्रह्मवैवर्त'

---

१. कृष्ण का चरित्र, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, 'आर्यमित्र' २६ जून १९५२
२. कृष्ण चरित्र, पृ० १७८

के आधार पर ही राधा को परकीया नायिका के रूप में उपस्थित कर निम्न पद की रचना की जो सामाजिक मर्यादा तथा शिष्ट रुचि के सर्वथा विपरीत है—

नीवी ललित गही जदुराई।
जबहिं सरोज धर्यो श्रीफल पर तब जसुमति तँह आई ॥

गोपी-प्रसंग का विवेचन करते हुए हम यह भी संकेत दे चुके हैं कि पुराण-वर्णित कृष्ण-गोपी तथा कृष्ण-राधा के इन शृंगारी प्रसंगों ने कालान्तर में रामोपासक-सम्प्रदाय को भी प्रभावित किया। जहाँ गोस्वामी तुलसीदास ने राम और सीता के मर्यादित आदर्श पति-पत्नी-प्रेम का पूर्ण संयम के साथ चित्रण किया है, वहाँ परवर्ती रामावत-सम्प्रदाय में परकीया-प्रेमभाव ने प्रवेश किया जिससे मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी अपने एकपत्नी-व्रत को त्यागकर सीता की सौतों के प्रति प्रेम की पैंगें बढ़ाते हुए चित्रित किये गये हैं। रामोपासक सखी-सम्प्रदाय की कलुषित कहानी भी उतनी ही विकृत है जितनी कृष्ण-भक्त कवियों का वह काव्य, जिसमें राधा-कृष्ण के नाम से उद्दाम शृंगार की पंकिल धारायें बहाई गई हैं।[1]

अब हम उन लोगों के तर्कों पर विचार करें (बंकिम भी इसमें सम्मिलित हैं) जो राधा और कृष्ण को प्रकृति और पुरुष का प्रतीक मानकर पुराण-वर्णित इन प्रेम-प्रसंगों को रूपक सिद्ध करना चाहते हैं। इनके कथनानुसार वैष्णवों की राधा वही है जो सांख्यकार की मूल प्रकृति है तथा प्रकृति-रूपी राधा का पुरुष-रूपी कृष्ण के साथ विवाह विधि-सम्पादित है। जिस प्रकार पुरुष के साहाय्य अथवा उसके नैकट्य से ही प्रकृति सृष्टि-रचना में समर्थ होती है, उसी प्रकार कृष्ण और राधा सम्मिलित रूप से ही सृष्टि-प्रपंच की रचना में समर्थ होते हैं। बंकिम ने अपनी बात को सिद्ध करने के लिए 'सांख्य दर्शन' के सिद्धान्त को विस्तारपूर्वक उद्धृत किया है। 'ब्रह्मवैवर्त' तथा 'विष्णु पुराण' के लम्बे-लम्बे उद्धरण भी इसी बात को सिद्ध करने के लिए दिये हैं, परन्तु हमारी आपत्तियाँ स्पष्ट हैं—

१. राधा-कृष्ण को पुरुष और प्रकृति का वाचक मानने में पूर्व-पक्षी के पास कौन-से शास्त्रीय प्रमाण हैं? क्या 'सांख्यदर्शन' के किसी

१. द्रष्टव्य—रामचन्द्र शुक्ल रचित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' तथा 'वर्तमान श्री अयोध्या माहात्म्य' नामक पुस्तक।

मूल या व्याख्या-ग्रन्थ में भी कोई ऐसा संकेत मिलता है जिसके आधार पर पुराण-वर्णित इस प्रसंग को दर्शन का जामा पहनाया जा सके ? यदि नहीं तो सांख्य-शास्त्र से राधा-तत्त्व को पुष्ट करना बालू में से तेल निकालने के तुल्य है।

२. यदि पुराणों में कहीं राधा को मूल प्रकृति और कृष्ण को पुरुष कहा गया, वहाँ तक तो ठीक, परन्तु यह अन्वेषणीय है कि इनके सम्बन्ध-विवेचन में पुराणकार को ऐसी क्या आवश्यकता पड़ी कि वह स्थूल संभोगात्मक ब्यौरे देकर ही पुरुष-प्रकृति के दर्शन-प्रतिपादित स्वरूप एवं सम्बन्ध की विवेचना करे ? पुराणों के इन घोर शृंगारी प्रसंगों से सांख्य-वर्णित दार्शनिक सिद्धान्त की संगति कैसे लगेगी ? राधा और कृष्ण के जिन शारीरिक सम्बन्धों का खुलकर पुराणकार ने वर्णन किया है उन्हें 'सांख्यदर्शन' के सन्दर्भ में कैसे व्याख्यात किया जायगा ?

निश्चय ही इन आपत्तियों का उत्तर रूपक माननेवाले महानुभावों द्वारा दिया जाना सम्भव नहीं है। अतः, राधा-कृष्ण के प्रेम को आध्यात्मिक रूपक माननेवालों की धारणा ताश के पत्तों के महत्त्व की भाँति धराशायी हो जाती है। वस्तुतः पुराण-वर्णित राधा-कृष्ण तो वासना-लोक के तुच्छातितुच्छ कृमियों के तुल्य ही हैं। उनकी तुलना आर्ष-दर्शनों में प्रतिपादित सिद्धान्तों से करना सर्वथा अनुचित एवं अन्याय-पूर्ण है।

राधा-कृष्ण-प्रेम की इस निराधार कल्पना ने देश के चरित्र को कितना विकृत कर दिया है, इसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। हमारे देशवासियों का आचार और चरित्र, उनका ओज और तेज, बल और पराक्रम ऐसी ही दूषित शृंगारी कथाओं तथा वासनोत्तेजक आख्यानों से नष्ट हुआ है। गोकुलिए गुसाइयों की लीलाओं तथा 'गोविन्द भवन' जैसे व्यभिचार के अड्डों को प्रोत्साहन देने में राधा-कृष्ण-प्रेम के ये विकृत प्रसंग ही उत्तरदायी हैं। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ डॉ० रामकृष्ण-गोपाल भंडारकर ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है—"कृष्ण की अपेक्षा राधा को प्रमुखता देनेवाली उपासना-प्रणाली ने एक ऐसे सम्प्रदाय को जन्म दिया जिसके सदस्य स्त्रियोचित व्यवहारों को धारण करते हैं, यहाँ तक कि मासिक धर्म का भी अभिनय करते हैं। उनके आचार-व्यवहार और कार्य इतने घृणाजनक होते हैं कि वे स्वयं भी

जनता के समक्ष नहीं आते। उनका उद्देश्य राधा की सखियाँ या सेविका बनने का होता है और सम्भवतः इसीलिये यह 'सखीभाव' की उपासना कहलाती है। यहाँ इसका उल्लेख करने की आवश्यकता इसलिये पड़ी कि जब दाम्पत्य-भाव को स्थूल रूप प्रदान किया जाता है तो इस प्रकार के घृणोत्पादक भ्रष्टाचार का उत्पन्न हो जाना अवश्यम्भावी ही है।"[१]

१. "The worship of Radha more prominently even than that of Krishna, has given rise to a sect, the members or which assume the garb of women with all their ordinary manners and affect to be subject even to their monthly sickness. Their appearance and acts are so disgusting that they do not show themselves very much in public. Their goal is the realisation of the position of female companions and attendents of Radha, and hence probably they assume the name of Sakhi Bhavas (Literally, the condition of companions). They deserve notice here only to show that, when the female element is idolised and made the objects of special worship, such disgusting corruptions must ensue." —Vaishnavism, Shaivism and Minor Religious Systems, p. 86.



ओ३म्
यहां पर आपको मिलेगी
वेद ,रामायण,महाभारत,गीता दर्शन,
उपनिषद ,मनुस्मृति,अर्थशास्त्र, चाणक्य
नीति, विदुर नीति, आध्यात्मिक, स्वास्थ्य,
योग, आयुर्वेद, ब्रह्मचर्य, व अन्य ज्ञान वर्धक
विषयों पर pdf पुस्तकें।
फ्री मे डाउनलोड करने के लिए टेलीग्राम
एप्लिकेशन मे वैदिक पुस्तकालय, या
आर्य पुस्तकालय सर्च करके चैनल
ज्वाइन करके डाउनलोड करें